International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 04(I), October - December, 2022, pp. 207-215

भारतीय चुनाव व्यवस्थाः चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ

डॉ. दिनेश कुमार गहलोत*
राजेश कुमार जाट**

सार

भारतीय लोकतंत्र स्वतंत्र, निष्पक्ष, पारदर्शी चुनाव तथा विशाल लोकतांत्रिक प्रक्रिया को संपन्न कराने का दावा करता है। किंतु, इसी लोकतंत्र में आम आदमी अब सत्ता के केन्द्र एवं रोजमर्रा की जिंदगी के बीच बढ़ती दूरी से कुंठित होता जा रहा है। लोकतंत्र के दिखाए सपने और जिंदगी के झंझावतों के बीच आम आदमी लोकतांत्रिक प्रक्रिया से बहुत उत्साहित प्रतीत नहीं होता है। ऐसे समय में भारतीय लोकतंत्र में कुछ बुनियादी परिवर्तनों की आवश्यकता है। लोकतंत्र में लोककल्याण की बात जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि करते हैं। प्रतिनिधि चुनने का काम निर्वाचनों के माध्यम से किया जाता है। निर्वाचन प्रक्रिया को लोकतंत्र की नींव भी कहा जा सकता है। यदि नींव सशक्त होगी, तभी लोकतंत्र का भी सशक्तीकरण हो पाएगा। जब भी चुनाव आते हैं, चुनाव सुधारों की मांग भी तेज हो जाती है। ऐसी मांगों पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए। पिछले दिनों कें सरकार ने चुनाव सुधार की दिशा में निर्णायक पहल करते हुए मतदाता पहचान पत्र को आधार कार्ड से जोडने, पंचायत एवं निकाय चुनावों और विधानसभा एवं लोकसभा चुनावों की मतदाता सूचियों को एक करने, नए मतदाताओं का नाम मतदाता सूची में एक वर्ष में कई बार शामिल करने संबंधी महत्वपूर्ण निर्णय लिए। ये सुधार आवश्यक थे, लेकिन इसके साथ ही अन्य सुधार भी अपेक्षित हैं। भारत में अनेक लोगों का नाम जाने–अनजाने एकाधिक जगहों पर मतदाता सूची में शामिल होता है। इससे न सिर्फ एक व्यक्ति एक मत के संवैधानिक प्रविधान का उल्लंघन होता है, बल्कि वास्तविक जनादेश का भी हरण हो जाता है। इससे मतदान का सही प्रतिशत पता करना भी मुश्किल होता है।

शब्दकोशः *चुनाव पारदर्शिता, स्वच्छ चुनाव, चुनाव सुधार, मतदाता सशक्तीकरण।*

प्रस्तावना

वर्ष 2014 में मतदान प्रतिशत बढ़कर 34 प्रतिशत और 2019 में 43 प्रतिशत हो गया। ऐसे हालात तब हैं, जब राजनीति में बढ़ते अपराधीकरण को लेकर लगातार जनता के बीच जाते रहते हैं। आज संसद में कई ऐसे प्रतिनिधि चुनकर बैठे हैं, जिन पर हत्या, अपहरण और बलात्कार जैसे गंभीर मामले दर्ज हैं। रेड अलर्ट चुनाव क्षेत्र की संख्या भी बढ़ रही है। यानी एक चुनाव क्षेत्र में तीन या तीन से ज्यादा आपराधिक छवि वाले उम्मीदवार खड़े हो रहे हैं। वर्ष 2019 के लोकसभा चुनाव में 60 प्रतिशत के करीब चुनाव क्षेत्र रेड अलर्ट थे। एक चुनाव क्षेत्र में चाहे कितने भी उम्मीदवार खड़े हो जायें, जीतने की संभावना कम से कम दो या तीन की ही होती है। आम तौर पर ये उम्मीदवार प्रमुख दलों के ही होते हैं। यदि जीत की संभावना वाले तीनों उम्मीदवारों के विरुद्ध आपराधिक मामले चल रहे हों, तो मतदाताओं के पास विकल्प क्या है। या तो वे अपना मत हारने वाले उम्मीदवार को दें, या फिर आपराधिक छवि वाले में से किसी एक को। इसलिए चुनाव में दागी लोग चुने जाते हैं। चुनाव के दौरान मतदाताओं को पैसे देने का काम उन्हें लुभाने के लिए किया जाता है। भले ही यह हत्या, अपहरण, बलात्कार जैसे स्तर का अपराध नहीं है, लेकिन इसे सही नहीं ठहराया जा सकता। यह कानूनी तौर

* सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान।
** शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान।

पर अपराध है। पर इसे राजनीतिक दलों व उम्मीदवारों ने इतना सामान्य बना दिया है कि अब लोग ही पैसे मांगने लगे हैं। एक बार इस तरह की बात शुरू हो जाने पर लोगों को इसकी आदत पड़ जाती है।

राजनीति में बढ़ती अपराधिक प्रवृत्ति को रोकने के लिए दो काम करने चाहिए। पहला, राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र बहाल होना चाहिए। सिर्फ हाइकमान ही फैसला करे, यह सही नहीं है। इस तरह से लोकतंत्र नहीं चलता है। राजनीतिक दलों को अपने आंतरिक मामलों में लोकतांत्रिक प्रक्रिया इस्तेमाल करनी होगी। तभी जाकर आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों के राजनीति में आने पर रोक लग पायेगी। दूसरा है वित्तीय पारदर्शिता। राजनीतिक दलों को कितना पैसा मिला, कहां से मिला, कैसे मिला, वह कहां, कितना और कैसे खर्च हुआ, इसके बारे में जनता को पता होना चाहिए। लेकिन लगभग सभी राजनीतिक दल वित्तीय पारदर्शिता से इनकार करते हैं। इसका कारण है कि हर दल में गुट बन गया है। दल के भीतर का यही छोटा गुट पार्टी को नियंत्रित करता है। पार्टी का पैसा, संपत्ति सब उसी के हाथ में है। टिकट भी वही बांटता है। तो ये जो निहित स्वार्थ है, उसी ने राजनीतिक दलों को अपने चंगुल में फंसा रखा है। जब तक राजनीतिक दलों को लोकतांत्रिक नहीं बनाया जायेगा, तब तक कुछ नहीं बदलेगा। इसके लिए सर्वोच्च न्यायालय को आगे आना होगा। सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार है कि यदि कानून में कोई कमी है, जिस पर संसद ने अभी तक गौर नहीं किया है और उसकी वजह से जनहित को हानि पहुंच रही है, तो वह कानून बना सकता है। और वो तब तक मान्य रहेगा, जब तक संसद उसे लेकर कोई कदम नहीं उठाती है। चुनाव आयोग के अधिकार सीमित हैं। वह कानून से बाहर नहीं जा सकता। राजनीति में शुचिता लाने के लिए जनता को अपनी आवाज बुलंद करनी होगी और न्यायपालिका को इसका संज्ञान लेकर निर्णय करना होगा। तभी परिवर्तन संभव है।[1] **भारतीय चुनाव व्यवस्था में सुधार की निम्न सम्भावनाएँ हैं–**

- **उम्मीदवारों की चयन प्रक्रिया को पारदर्शी बनाना :** किसी भी दल को निर्वाचन में अपने उम्मीदवार को चुनने के लिए एक पारदर्शी व्यवस्था बनाने की आवश्यकता है। साथ ही इस प्रक्रिया को ऐसे समय में पूर्ण करने की आवश्यकता है जिससे जनमेला और उम्मीदवार की निर्वाचन प्रक्रिया में एक अच्छा खासा अंतराल हो जिससे किसी भी विवाद का निपटारा उचित समय पर हो सके। व्यक्तिगत दल उम्मीदवारों के चयन प्रक्रिया को परिभाषित करने के लिए स्वतंत्र हैं और इसे सार्वजनिक डोमेन में प्रकाशित करने की आवश्यकता है। उमीदवारों के चयन के लिए जो भी संभावित उम्मीदवारों की सूची हो वह सार्वजनिक समीक्षा के लिए उपलब्ध होनी चाहिए।

नवम्बर, 1998 से संसद एवं विधान मंडलों के सभी निर्वाचनों में ई.वी.एम. का प्रयोग किया जाता रहा है। इससे मतों की गिनती करने, इसे तेजी से, शांतिपूर्वक निष्पादित करने और अवैध मत मुक्त बनाने के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। मत गिनती के दिन होने वाले झगड़ों झंझटों एवं तनावों से अब निजात मिल गई है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि यह भारतीय लोकतंत्र के लिए एक विलक्षण मशीन सिद्ध हुई है। अनेक देश जैसे– भूटान, नेपाल एवं नामिबिया ने इसे अपनाया है जबकि अन्य कई देश इसे अपनाने पर गहनता से विचार कर रहे हैं। ईवीएम में सदैव नया स्तरोन्नयन हो रहा है। नवीनतम परिवर्तन मतदाता सत्यापनीय कागज जाँच ट्रेल (वी.वी.पी.ए.टी.) को इसमें जोड़ा गया है। वी.वी.पी.ए.टी. मतदाता को यह सत्यापित कराता है कि उसने सही तरीके से अपना मत डाल दिया है तथा यह उसे स्टोर किए गए इलेक्ट्रोनिक परिणामों की जांच करने का साधन भी प्रदान करता है। अब हमारे पास विश्व की सर्वाधिक पारदर्शी विश्वसनीय निर्वाचन प्रणाली है। भारतीय निर्वाचन आयोग द्वारा इस विशाल कार्य को निष्पादित करने के तरीके को चार हॉलमार्क परिलक्षित करते हैं– स्वतंत्रता, पारदर्शिता, निष्पक्षता तथा व्यावसायिकता। यह आयोग में जनता के पूर्ण विश्वास को सुनिश्चित करता है।

लोकसभा चुनाव 2014 की एक नई अनोखी विशिष्टता समाचार मीडिया, मोबाइल टेलीफोनी तथा सोशल मीडिया सहित की पहली बार किसी निर्वाचन में निभाई गई महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। कुछ ने तो सोशल मीडिया को नई निर्वाचन 'युद्धभूमि' और आम निर्वाचन, 2014 को प्रथम सोशल मीडिया निर्वाचन की संज्ञा तक दे डाली।[2]

जनमेला से महंगे निर्वाचन का चलन खत्म करना

इसमें शायद ही दो मत हो कि ऐसी परिस्थिति बदलनी चाहिए। निर्वाचन खर्चों में एक सीमा तक लगाम लग जानी चाहिए। इन सबका एक समाधान हो सकता है बस आवश्यकता है सबको इस दिशा में आगे बढ़ने का। निर्वाचनों के दौरान हम आए दिन होने वाली रैलियों और उसके शोर से बच सकते हैं अगर निर्वाचन आयोग इस प्रस्ताव पर गंभीरता से विचार करे तो हमें इन रैलियों और सभाओं पर रोक लगा देनी चाहिए। तो वहीं दूसरी तरफ निर्वाचन आयोग को बस यह प्रयास करना होगा कि वह एक ऐसे दो–तीन दिनों के जनमेला का आयोजन कर सकें जहाँ एक विधानसभा क्षेत्र के सभी प्रत्याशी आयें। यह आयोजन मतदाताओं की संख्या के आधार पर दो–तीन जगहों पर भी करवाया जा सकता है। इसके लिए एक समय निर्धारित कर दिया जाए और एक उपयुक्त जगह या मैदान में निर्वाचन से पहले इस 'जनमेला' का आयोजन किया जाए। जहाँ सभी प्रत्याशी अपने–अपने स्टॉल और एक समान मंच स्थापित कर ज़िम्मेदारी और जवाबदेही के साथ अपनी बात और विजन मतदाताओं के सामने पूर्व निर्धारित मानकों के आधार पर रखें। ये मानक निर्वाचन आयोग या संसदीय विमर्श से तय किये जा सकते हैं। कुछ उदाहरण– आपकी पर्यावरण के बारे में समझ, आपकी स्थानीय संस्ृति पर पकड़, शिक्षा, आर्थिक नीति रुझान, विशेषज्ञता, प्रशासनिक या समाजिक अनुभव इत्यादि।[3]

अनिवार्य मतदान का प्रावधान

लोकतांत्रिक प्रणाली के तहत जितने अधिकार नागरिकों को मिलते हैं, उनमें सबसे बड़ा अधिकार है वोट देने का अधिकार। इसी अधिकार को पाकर हम मतदाता कहलाते हैं। लेकिन विडंबना है कि सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश और इस चुनावी महापर्व में ही हम मतदान करने से कतराते हैं। मतदान के दिन को अवकाश का दिन मान लिया जाता है। हालांकि भारत के अलावा विश्व में 33 ऐसे देश हैं, जहां मतदान अनिवार्य किया गया है।

अनिवार्य मतदान का अर्थ है कि कानून के अनुसार किसी चुनाव में मतदाता को अपना मत देना या मतदान कें पर उपस्थित होना। इनमें बेल्जियम, स्विटजरलैंड, आस्ट्रेलिया, सिंगापुर, अर्जेंटीना, आस्ट्रिया, साइप्रस, पेरू, ग्रीस और बोलीविया प्रमुख हैं। सिंगापुर में अगर वोट नहीं करते हैं तो मतदान के अधिकार तक छीन लिए जाते हैं। ब्राजील में मतदान नहीं करने पर पासपोर्ट जब्त कर लिया जाता है। बोलिविया में मतदान नहीं करने पर तीन माह की तनख्वाह वापस ले ली जाती है। बेल्जियम में तो 1893 से ही वोटिंग नहीं करने पर जुर्माने का प्रावधान है। ऐसे कई देश ऐसे हैं, जहां मतदान न करने पर सजा का प्रावधान है। इनमें ऑस्ट्रेलिया, अर्जेंटीना, बेल्जियम, ब्राजील, चिली, साइप्रस, कांगो, इक्वाडोर, फिजी, पेरू, सिंगापुर, स्विट्जरलैंड, तुर्की, उरुग्वे जैसे देश शामिल हैं। अनिवार्य मतदान नियम लागू वाले 33 में से 19 देशों में इस नियम को तोडने पर सजा भी दी जाती है। आस्ट्रेलिया, अर्जेंटीना, ब्राजील, सिंगापुर, तुर्की, बेल्जियम आदि 19 देशों में चुनावी प्रक्रिया लगभग हमारे देश जैसी है।

हमारे देश में मतदान भले ही अनिवार्य नहीं हो, लेकिन दूसरे देशों से सीख लेने की जरूरत है। इसे सिर्फ एक काम न मानकर देश के बेहतर भविष्य निर्माण के भागीदार बनें। जब विदेशों में मतदान करने के लिए सभी अपने घर से बाहर निकलते हैं, तो हम और आप क्यों नहीं। देश के बेहतर भविष्य निर्माण के भागीदार जरूर बनें।[4]

निर्वाचन खर्च में कटौती करने की आवश्यकता

भारत के लोकतंत्र को धन–बल के प्रभाव से कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इसका सबसे बुरा और परोक्ष प्रभाव है भ्रष्टाचार में वृद्धि या कहें कि भ्रष्टाचार को अघोषित मान्यता मिलना। करोड़ों खर्च कर चुनाव जीतने वाले जनसेवा के भाव से तो आते नहीं हैं। उनका प्राथमिक मकसद होता है अपने खर्च हुए रुपए बटोरना और अगले चुनाव की लागत वसूलना। चुनावी खर्च एक ऐसा मुद्दा है जिसमें निर्वाचन आयोग, राजनीतिक दल और भारत सरकार तीनों के ही अपने–अपने दृष्टिकोण हैं। सैद्धांतिक रूप से यह माना गया है कि चुनाव में भागीदारी करने या निर्वाचित होने का अधिकार देश के हर नागरिक को है। इसलिए सबको

एक समान अवसर प्रदान करने के लिहाज से चुनाव संहिता के तहत उम्मीदवारों के खर्च की सीमा निर्धारित की गई थी, ताकि ऐसा न हो कि आर्थिक ताकत के बूते धनाढ्य वर्ग चुनाव जीत जाए और अपेक्षाकृत गरीब या सामान्य तबके का व्यक्ति इसमें पिछड़ जाए।

निर्वाचन आयोग ने चुनाव खर्च सीमा का अनुपालन कराने के लिए कई उपाय कर रखे हैं, जैसे कि खर्च की स्वीकार्य लागत को तय करना, खर्च पर निगरानी के लिए पर्यवेक्षकों की नियुक्ति करना, उम्मीदवार के खर्च संबंधी रजिस्टर की जांच और पर्यवेक्षकों के आकलन से उनकी तुलना, यहां तक कि उम्मीदवारों के प्रमुख चुनावी कार्यक्रमों की वीडियोग्राफी करवाना आदि। लेकिन वास्तविकता यह है कि इन सारे उपायों के बावजूद चुनावों में धन के बढ़ते इस्तेमाल को रोकने या खर्च की असलियत का पता लगाने में कोई विशेष सफलता नहीं मिली है। जैसे–जैसे धन खर्च के नियमन का प्रयास हुआ, वैसे–वैसे इन नियमों को अप्रभावी बनाने के लिए नए–नए तरीके भी खोज लिए गए। इसके लिए राजनीतिक दलों का आपसी सामंजस्य, पार्टियों का इस मुद्दे पर सुविधापूर्ण विरोध, राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के साथ ही प्रशासनिक शिथिलता भी दोषी है। राजनीतिक दलों का तर्क होता है कि चुनावी खर्च की अब तक निर्धारित सीमा अव्यावहारिक है। उम्मीदवारों पर तय सीमा से अधिक खर्च करने के मामले में उनका तर्क होता है कि यदि चुनावी खर्च की सीमा को बढ़ा दिया जाए तो उम्मीदवारों को अपने हलफनामे में झूठ नहीं बोलना पड़ेगा। इसके बावजूद यथार्थ कुछ अलग है। आजादी के बाद भारत के लोकतंत्र पर धन का दबाव बढ़ता ही जा रहा है। लोकतंत्र पर धन के प्रभाव को देखना हो तो कुछ आंकड़ों पर गौर करना होगा। देश के पहले तीन लोकसभा चुनावों में सरकारी खर्च प्रति वर्ष लगभग दस करोड़ रुपए था। वर्ष 2009 के लोकसभा चुनावों में यह एक हजार चार सौ तिरासी करोड़ था, जो वर्ष 2014 में बढ़ कर ढाई गुने से ज्यादा यानी तीन हजार आठ सौ सत्तर करोड़ रुपए हो गया। एक करोड़ से अधिक की संपत्ति वाले सांसदों का प्रतिशत सन 2009 में अठ्ठावन फीसद, 2014 में बयासी फीसद और 2019 में बढ़ कर अठ्ठासी फीसद हो गया। आंकड़े के अनुसार दुबारा निर्वाचित (2019) सांसदों की संपत्ति में उनतीस फीसद की औसतन वृद्धि हुई है। वर्ष 2009 में लोकसभा चुनाव में खर्च की सीमा पच्चीस लाख रुपए, 2011 में चालीस लाख रुपए और 2014 में सत्तर लाख रुपए कर दी गई थी। इन आंकड़ों से प्रतीत होता है कि अगर कोई सामान्य या निम्न आर्थिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति जन सेवा के लिए राजनीति को माध्यम बनाना चाहे तो उसके निर्वाचित होने के आसार दुर्लभ हैं।

वर्ष 2018 में कें सरकार ने चुनावी बांड योजना की अधिसूचना जारी की थी। इसे राजनीतिक दलों को दिए जाने वाले नगद दान के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वर्ष 2018 के बजट में राजनीतिक दलों को विदेशी स्रोतों से चंदा ध्अंशदान प्राप्त करने की अनुमति दी गई थी। उसी अनुरूप विदेशी अंशदान (विनियमन) अधिनियम, 2010 में संशोधन कर दिया गया। इस संशोधन के तहत विदेशी कंपनी की परिभाषा को संशोधित कर दिया गया है। इसके माध्यम से कंपनियों के लिए राजनीतिक चंदे पर लगी अधिकतम सीमा हटा ली गई। इससे पूर्व कंपनियां अपने तीन साल के शुद्ध लाभ का अधिकतम साढ़े सात फीसद हिस्सा ही राजनीतिक चंदे के तौर पर दे सकती थीं। साथ ही, उन्हें यह बताने की शर्त से भी छूट मिल गई कि उन्होंने किस दल को कितना चंदा दिया है।

भारत के लोकतंत्र को धन–बल के प्रभाव से कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इसका सबसे बुरा और परोक्ष प्रभाव है भ्रष्टाचार में वृद्धि या कहें कि भ्रष्टाचार को अघोषित मान्यता मिलना। करोड़ों खर्च कर चुनाव जीतने वाले जनसेवा के भाव से तो आते नहीं हैं। उनका प्राथमिक मकसद होता है अपने खर्च हुए रुपए बटोरना और अगले चुनाव की लागत वसूलना। दूसरा नुकसान यह है कि अपराधियों को भी इससे प्रोत्साहन मिलता है। राजनीति के माध्यम से असमाजिक तत्व और अपराधी 'माननीय' बन जाते हैं जिससे उन्हें कानून और प्रशासन से प्राथमिकता मिल जाती है और इसका प्रभाव वे अपना वर्चस्व बढ़ाने में करते हैं। वर्ष 2009 के चुनाव में आपराधिक मामलों के आरोपी उनतीस फीसद उम्मीदवार विजयी रहे। 2014 में यह आंकड़ा चौंतीस फीसद था और 2019 में बढ़ कर तियालीस फीसद हो गया था।[5] इस दिशा में निम्न सुधार विचारणीय हो सकते हैं–

- 1974 में अभ्यर्थी के निर्वाचन व्यय में राजनीतिक दल मित्रों, और समर्थकों द्वारा किए गए खर्च को सम्मिलित न करने की व्यवस्था को निरस्त किया जाए। इसे 1976 से पूर्व की स्थिति में लाया जाए तथा निर्वाचन पूर्व व बाद में किए गए सभी खर्चे उसमें सम्मिलित किए जाए।
- जो अभ्यर्थी अपने निर्वाचन व्यय का विवरण निर्धारित अवधि में प्रस्तुत न करे, उन्हें पांच वर्ष तक निर्वाचन लड़ने के अयोग्य घोषित किया जाए।
- निर्वाचन व्यय की मिथ्या सूचना को भ्रष्ट आचरण माना जाए।
- मतदान के दौरान प्रत्याशियों या समर्थकों को वाहन लाने पर रोक लगाई जाए।
- अगर उम्मीदवार निर्वाचन आयोग द्वारा निर्धारित राशि से ज्यादा खर्च करता हुआ पकड़ा जाता है, तो उसका निर्वाचन रद्द कर उसे ब्लैकलिस्ट में डाला जाए।
- निर्वाचन में उम्मीदवारों के खर्च के साथ–साथ राजनीतिक दलों के खर्च की सीमा भी निर्धारित की जानी चाहिए। और आर टी आई के अन्तर्गत राजनीतिक दलों से हिसाब लेने की व्यवस्था की जानी चाहिए।[6]

देश में स्वतन्त्र और निष्पक्ष निर्वाचन सुनिश्चित करने के लिए केन्द्र ने कुछ दिनों पहले निर्वाचन बाण्ड की रूपरेखा जारी की। इसके जरिये कोई भी व्यक्ति ऐसे राजनीतिक दल को दान दे सकता है, जो निर्वाचन आयोग में पंजीकृत हो और जिसने पिछले निर्वाचन में एक फीसदी मत हासिल किए हो। दलों के लिए उनका रजिस्टर्ड खाता व सालाना रिटर्न में कितने बाण्ड प्राप्त हुए बताना अनिवार्य किया गया है। यह योजना दो तरह से बेहतर काम करेगी। एक लेन–देन डिजीटल होगा, और आवश्यकता पड़ने पर बैंक खाते के माध्यम से किए जाने का विकल्प मौजूद है, ऐसे में यह योजना काले धन के प्रयोग को न्यूनतम करने में सहायक होगी।

एसोसिएशन ऑफ डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स के आंकड़ों के अनुसार 70 प्रतिशत राजनीतिक चंदा अज्ञात स्त्रोतों से हासिल होता है। दूसरा दल द्वारा हासिल एक फीसदी मत व रजिस्टर्ड खाते वाली शर्त अयोग्य दलों पर रोक लगाने में कारगार सिद्ध होगी, लेकिन दानकर्ता के नाम न बदलने का प्रावधान पारदर्शिता घटाता है। लोकसभा एवं राज्य विधानमंडलों के निर्वाचनों का एक साथ आयोजन बार–बार निर्वाचन नीति निर्माण व शासन को प्रभावित करता है क्योंकि सरकार लघु अवधि की चिन्ताओं में फंस जाती है। पूरी प्रशासनिक मशीनरी निर्वाचन कार्य में व्यस्त हो जाती है, जिससे अन्य सरकारी सेवाओं का समयबद्ध क्रियान्वयन प्रभावित होता है। निर्वाचन तिथियों की घोषणा के साथ ही आदर्श आचार संहिता लागू हो जाती है जो नई योजनाओं की घोषणा, नई नियुक्तियों, स्थानान्तरण व पदास्थापन आदि पर निर्वाचन आयोग की अनुमति के बिना पर रोक लगा देती है। यह सरकार के आम कार्यकलाप को अवरूद्ध कर देती है। प्रत्येक वर्ष विभिन्न निर्वाचनों पर बहुत बड़ी राशि खर्च होती है और दलों के स्टार प्रचारक पूरे वर्ष निर्वाचन मुद्रा में रहते हैं, जिससे उनके अधिकारिक कर्त्तव्यों के क्रियान्वयन में कमी आती है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक देश एक चुनाव का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि लोकसभा और राज्य विधानसभाओं तथा पंचायतों व शहरी स्थानीय निकायों के निर्वाचन एक साथ करवाए जाएं। इस विषय पर पेश संसद की स्थायी समिति की रिपोर्ट पर विधि मंत्रालय ने निर्वाचन आयोग की राय आमंत्रित की। आयोग ने इस विचार का समर्थन किया। लेकिन इसमें आने वाली लागत और संविधान की प्रक्रियात्मक आवश्यकता की ओर ध्यान दिलाया।

निर्वाचन आयोग ने प्रधानमंत्री के एक देश एक चुनाव के प्रस्ताव पर एक साल एक चुनाव का सुझाव दिया है। निर्वाचन आयोग के अनुसार संविधान के पांच अनुच्छेदों में संशोधन करना होगा। इनमें अनुच्छेद 83 (संसद का कार्यकाल) अनुघ्छेद 85 (राष्ट्रपति की अनुशंसा पर लोकसभा भंग करना), अनुघ्छेद 172 (राज्यों की विधान सभा का कार्यकाल) अनुघ्छेद 174 (राज्यों की विधानसभा का समापन) अनुघ्छेद 356 है, सम्मिलित है। निर्वाचन आयोग के पूर्व कानूनी सलाहकार मेंदीरत्ता के अनुसार जनप्रतिनिधित्व कानून, 1951 की धारा 15 में संशोधन करके लागू किया जा सकता है। इस संशोधन से छह माह की अवधि में कुछ माह बढ़ाया जाये तो एक

साल में होने वाले निर्वाचन एक साथ कराए जा सकते हैं।[7] एक साथ निर्वाचन से सरकार को आदर्श आचार संहिता लागू होने से आने वाली रूकावट के बिना नीतियां बनाने और लगातार कार्यक्रम लागू करने के लिए पर्याप्त समय मिलेगा। लेकिन एक साथ निर्वाचन कराने से पहले तमाम राजनीतिक दलों को इसके लिए सहमत करना आवश्यक है। नीति आयोग ने भी एक देश, एक चुनाव को 2024 से शुरू किए जाने का समर्थन किया है। लेकिन इसके लिए अभी काफी कवायद की आवश्यकता है। इसके लिये पहले प्रशासनिक व तकनीकी स्तर पर अनेक प्रयास व सुधार अपेक्षित हैं।

निर्वाचन आयोग और अधिक सशक्त हो

भारत में स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष निर्वाचन सुनिश्चित करने हेतु निर्वाचन आयोग का सृजन संविधान द्वारा किया गया है, किन्तु कुशल, निष्पक्ष और स्वतंत्र निर्वाचनों के हित में इसका और अधिक सशक्त होना अपरिहार्य प्रतीत होता है[8]–

निर्वाचन कार्यों में शिथिलता या लापरवाही के दोषी कर्मचारियों के विरुद्ध कार्यवाही करने का कानूनी अधिकार अनन्य रूप से निर्वाचन आयोग में निहित किया जाना चाहिए। इस हेतु निम्नलिखित कदम उठाए जाने अपेक्षित है–

- लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 की धारा 32 और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 134 व (2) मे इस तरह परिवर्तन किया जाए, जिससे ऐसे अपराधों में कम से कम दो वर्ष का कारावास दिया जा सके।
- ऐसे कर्मचारियों की जांच व मुकदमा चलाने का अधिकार, निर्वाचन आयोग किसी भी संस्था को दे सके।
- ऐसे कर्मचारियों के विरुद्ध प्रशासनिक कार्यवाही भी अनिवार्यतः की जानी चाहिए।
- जब भी आवश्यक हो, ऐसे अपराधों की सुनवाई के लिए विशेष न्यायालय बनाए जाए।
- सम्बन्धित राज्य सरकार की स्वीकृति की प्रतीक्षा किए बिना ही आयोग के आदेश से दोषी कर्मिक पर कार्यवाही वैध मानी जानी चाहिए।
- आयोग के पर्यवेक्षकों को सक्षम बनाया जाए। निर्वाचन आयोग विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में निर्वाचनों की समुचित देख–रेख और पर्यवेक्षण के लिए देश भर में अपने पर्यवेक्षक नियुक्त करता है इन पर्यवेक्षको को आयोग की और से उसका प्रतिवेदन देने के अतिरिक्त निर्णय लेने सम्बन्धी कोई विधिक शक्तियां प्राप्त नहीं होती। समीक्षकों द्वारा इन्हें आयोग के अधिकार शून्य कार्य की संज्ञा भी दी जाती रही है। गत दशक में निर्वाचनों के आयोजन में भी व्यावहारिक कठिनाईयां निर्वाचन क्षेत्रों में उपस्थित हुई है, उनके सम्बन्ध में यदि समस्याग्रस्त स्थल पर ही निर्णय लिए जाए तो निर्वाचन आयोग की निष्पक्षता जन साधारण में अधिक प्रतिष्ठत हो सकेगी। इसलिए इन पर्यवेक्षकों को निर्वाच आयोग के उप निर्वाचन आयुक्त और सचिव के समान अधिकार दिए जाने चाहिए। ये पर्यवेक्षक मतदान स्थल पर रिटर्निंग अधिकारी, जिला निर्वाचन अधिकारी, पीठासीन अधिकारियों को आयोग की ओर से निर्देश देने के लिए अधिकृत होने चाहिए। यद्यपि इनके द्वारा दिए गए निर्देशों को आयोग द्वारा पुष्टि की अनिवार्य व्यवस्था होनी चाहिए। इस हेतु लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के भाग 19(क) में संशोधन करने की आवश्यकता होगी ताकि पर्यवेक्षकों की भूमिका को विधिक आधार और सम्बल प्राप्त हो सके।

एक उम्मीदवार के दो सीटों से चुनाव लड़ने पर रोक

चुनाव आयोग ने एक से अधिक सीटों पर चुनाव लड़ने की प्रक्रिया पर रोक की अपनी मांग को दोहराया है। आयोग ने इस संबंध में कानून में संशोधन करने पर जोर दिया है। साथ ही कहा है कि यदि ऐसा नहीं किया जा सकता, तो अपनी सीट छोड़ने वालों पर भारी जुर्माना लगाने का प्रावधान करना चाहिए। क्योंकि निर्वाचन क्षेत्र की सीट खाली होने की स्थिति में आयोग को उपचुनाव कराना होता है। देश के मुख्य चुनाव

आयुक्त राजीव कुमार ने विधायी सचिव के साथ बातचीत में प्रस्तावित कानून में सुधार को लेकर जोर दिया है। कानून में सुधार की मांग पहली बार 2004 में रखी गई थी। चुनाव आयोग से संबंधित मुद्दों से निपटने के लिए विधायी विभाग सरकार में नोडल एजेंसी है। मौजूदा चुनावी कानून के मुताबिक कोई भी उम्मीदवार दो अलग–अलग निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव लड़ सकता है। ऐसे में यदि कोई व्यक्ति एक से अधिक सीटों से निर्वाचित होता है तो वह सिर्फ एक सीट पर ही दावा कर सकता है। वर्ष 1996 में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम में संशोधन किया गया था। ताकि किसी भी व्यक्ति को दो से अधिक सीटों से चुनाव लड़ने से रोका जा सके। संशोधन से पहले, चुनाव लड़ने के लिए निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या पर कोई रोक नहीं थी। चुनाव आयोग ने साल 2004 में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम की कुछ धाराओं में संशोधन का प्रस्ताव दिया थी। ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि एक व्यक्ति एक वक्त पर एक से अधिक सीटों पर चुनाव न लड़ सके। चुनाव आयोग ने अपने प्रस्ताव में कहा है कि यदि मौजूदा प्रावधानों में संशोधन संभव नहीं है, तो दो सीटों से चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को उस सीट के लिए उप–चुनाव का खर्च वहन करना चाहिए। जिसे उम्मीदवार दोनों सीटों पर जीत हासिल करने की स्थिति में खाली करने का फैसला करता है।[9]

राजनीतिक अपराधीकरण पर रोक

लोकतंत्र की सफलता के लिए यह सर्वप्रमुख आवश्यक है कि हमारे प्रतिनिधि अपराधी न हो। निर्वाचन व्यवस्था में मौजूद निर्वाचन कानूनों में संशोधन कर अपराधियों को निर्वाचन प्रक्रिया में खड़े होने से रोकना होगा। इसमें राजनीतिक दलों की सद्बुद्धि तथा जनता का दबाव भी सहायक हो सकता है। मतदाता के सूचना के अधिकार के अन्तर्गत मतदाता को प्रत्याशी की आपराधिक पृष्ठभूमि जानने का अधिकार है। तथा इस पर सीधे नियन्त्रण की आवश्यकता है। अपराधियों अथवा अभियुक्तों के संसद और विधान मण्डलों में पहुंचने से पहले ही नियन्त्रणकारी उपाय करने होंगे।

राजनीति में अपराधियों की 1970 के दशक से जो बाढ़ आई वह अब विकराल रूप ले चुकी है। राजनीति के अपराधीकरण को रोकने हेतु अनेक आयोग बने, कुछ प्रयोग भी हुए, लेकिन नतीजा सिफर रहा। संसद, विधानसभाओं और पंचायतीराज संस्थाओं में आपराधिक वृत्ति वालों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार 2004 में 24 प्रतिशत, 2009 में 30, 2014 में 34 और 2019 में 43 प्रतिशत दागी किस्म के लोग संसद पहुंचे। वर्तमान में 159 सांसदों पर हत्या, दुष्कर्म और अपहरण के गंभीर मामले दर्ज हैं। 2018 में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश दिए हैं कि उम्मीदवारों को टिकट मिलने के बाद उन्हें अपने ऊपर दर्ज सभी अपराधों की सूचना अपने दल को देनी होगी और दल को 48 घंटे के भीतर सार्वजनिक रूप से बताना होगा कि उसने अपराधी छवि के प्रत्याशी को टिकट क्यों दिया। आज साधारण व्यक्ति किसी पार्टी से टिकट की उम्मीद नहीं कर सकता, क्योंकि अधिकतर टिकट खरीदे और बेचे जा रहे हैं। लोकसभा और विधानसभा चुनावों की कौन कहे, पंचायत चुनावों तक में पैसा पानी की तरह बहाया जा रहा है। सत्ता, अपराध और धन की तिकड़ी राजनीति पर जैसे कुंडली मारकर बैठी है। ऐसे में लोगों की आस्था लोकतंत्र से उठ सकती है और तब जनता संभवतरू कोई वैकल्पिक प्रयोग करना चाहेगी।

सुप्रीम कोर्ट के जज न्यायमूर्ति अरुण मिश्र ने क्षुब्ध होकर टिप्पणी की, 'इस देश में कानून बचा भी है? यहां रहने से बेहतर है कि देश छोड़ कर चला जाऊं।' जब न्यायमूर्ति की यह दशा है तो आमजन की क्या दुर्दशा होगी, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।[10]

प्रो. जगदीप छोकर के अनुसार– 'जब तक लोग अपराधियों को मत देना बन्द नहीं करते तब तक राजनीतिक दल उन्हें टिकट देना जारी रखेगें'[11] देश में निर्वाचन प्रक्रिया को स्वच्छ बनाने व राजनीति के अपराधीकरण पर अंकुश लगाने के उद्देश्य से निर्वाचन आयोग ने सभी राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों के निर्वाचन अधिकारियों को अगस्त 2005 में यह निर्देश जारी किया है कि जिन लोगों के विरुद्ध गैर जमानती वारंट पिछले छः माह से लम्बित है, उनके नाम मतदाता सूची से हटा दिए जाएं। मतदाता सूची में नाम न होने से ऐसे लोग निर्वाचन लड़ने से स्वतः ही अयोग्य हो जाएंगे।

चन्दे में पारदर्शिता के लिए कठोर कानून की आवश्यकता

चुनाव प्रक्रिया की ईमानदारी (पवित्रता) राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों की प्रभावी भागीदारी पर काफी कुछ निर्भर करती है। इसके लिए चुनाव में धन खर्च करना पड़ता है। जाहिर है, सत्तारूढ़ पार्टी को चुनाव लड़ने और पैसा खर्च करने में कोई समस्या नहीं है, लेकिन विपक्षी दलों और स्वतंत्र उम्मीदवारों के पास संसाधनों की कमी होती है। इसलिए चुनावों के वित्तपोषण की प्रक्रिया को बदलने की तत्काल आवश्यकता है। उम्मीद की गई थी कि ऐसा धीरे–धीरे हो जाएगा, पर नहीं हुआ। चुनावी बांड ने इस प्रक्रिया को और अपारदर्शी बना दिया है। अब आम तौर पर लोगों को पता ही नहीं चलता कि किस व्यावसायिक घराने या कंपनी ने किसे चंदा दिया है और उसमें क्या गड़बड़ी है। इसका नतीजा हुआ कि ज्यादातर फंडिंग (कुछ रिपोर्ट के अनुसार 80 फीसदी) कें में सत्तारूढ़ पार्टी को हुई। इसलिए कानून में संशोधन करने और चुनावी बांड की प्रक्रिया को ज्यादा पारदर्शी बनाने की जरूरत है। सर्वोच्च न्यायालय को इस कानून को चुनौती देने वाली याचिका पर तेजी से सुनवाई करनी चाहिए। कें सरकार को भी चुनावी फंडिंग को और अधिक पारदर्शी बनाने के लिए पुनर्विचार करना चाहिए। चुनाव में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। अधिकांश देशों में यह लोकतांत्रिक मूल्यों को बनाए रखने में अहम भूमिका अदा करता है। चुनाव प्रक्रिया के दौरान इससे सभी दलों को बराबर महत्व दिए जाने की उम्मीद रहती है। पर दुर्भाग्य से लोकतंत्र के प्रहरी के रूप में कुछ वर्षों में प्रेस की स्वतंत्रता और इसके कामकाज में कमजोरी आई है। तेजी से ऐसी भावना बढ़ रही है कि प्रेस अपना काम सही तरीके से नहीं कर रहा। वर्ष 2020 में, प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक में 180 देशों में से भारत की प्रेस स्वतंत्रता रैंक 136 (2015) से गिरकर 142 पर आ गई है। प्रेस परिषद और मीडिया के अन्य स्व–विनियमन निकायों को इस पर ध्यान देना चाहिए। निर्वाचन आयोग एक ऐसा संगठन है, जो देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए उत्तरदायी है। अतीत में इसने बहुत अच्छा काम किया और वैश्विक स्तर पर इसकी प्रशंसा हुई। पर कुछ हालिया कार्रवाई के चलते इसकी कार्यप्रणाली पर सवाल उठे हैं। इसके कई फैसलों ने इस विश्वास को बल दिया है कि आयोग मानदंडों के अनुसार पूरी तरह से काम नहीं कर रहा। वर्ष 2019 में जब एक चुनाव आयुक्त ने सत्ताधारी पार्टी के वरिष्ठ नेताओं के आचरण को आदर्श आचार संहिता का उल्लंघन बताया, तो उन्हें हटा दिया गया और कुछ सरकारी जांच एजेंसियों ने उनके परिवार के एक सदस्य के खिलाफ जांच शुरू कर दी। चुनाव आचार संहिता में एक प्रावधान है कि मतदान से 48 घंटे पहले राजनीतिक रैलियां और सभाएं बंद हो जाएंगी। लेकिन पड़ोसी निर्वाचन क्षेत्र में जब वरिष्ठ नेता रैली करते हैं और उसे टीवी पर दिखाया जाता है, तो इसका खुलेआम उल्लंघन होता है। चुनाव आयोग को अपने कामकाज पर विचार करना चाहिए और ऐसे मानदंड बनाने चाहिए, जिससे और भरोसा पैदा हो।[12]

नकारात्मक मत को पूरा महत्व मिले

सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के बाद निर्वाचन आयोग ने नो मत की व्यवस्था तो कर दी लेकिन इसका निर्वाचन परिणाम पर कोई असर नहीं पड़ता है। अगर नोटा के पक्ष में पड़े मत सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार से भी अधिक है, तो भी निर्वाचन अवैध नहीं होगा। नोटा मतों की संख्या निर्वाचन परिणामों को प्रभावित नहीं कर सकती है, क्योंकि मतगणना के समय नोटा मतो को अवैध मानते हुए खारिज कर दिया जाता है। इससे यह सिर्फ एक कागजी अधिकार बनकर रह गया है।[13]

जिन निर्वाचन क्षेत्रों में नोटा के पक्ष में 50 प्रतिशत या उससे अधिक मतदान हो वहां निर्वाचन रद्द करने और उसकी जगह दुबारा निर्वाचन कराने का प्रावधान किया जाए। नकारात्मक मत को पूरा महत्त्व मिलना चाहिए और उसकी भी गणना प्रत्याशियों को मिले मतों की तरह ही होनी चाहिए। इस प्रचलन की तार्किक परिणति तो यह होगी कि नोटा के साथ 'वापस बुलाने के अधिकार' के विकल्प को भी जोड़ा जाए जिससे मतदाता उन उम्मीदवारों को वापस बुला सके जिनका उन्होंने चुनाव किया है। इससे उम्मीदवारों में अपना काम काज सही करने का भय रहेगा तथा नोटा की उपयोगिता जनता की असंतुष्टि के पूर्व संकेतक के रूप में भी सिद्ध होगी।

नोटा लागू होने के बाद से अब तक एक लोकसभा और अनेक विधानसभा

निर्वाचन हो चुके हैं फिर भी नोटा के अन्तर्गत किये गए मतदान का प्रतिशत 2.02 से आगे नहीं बढ़ा है, दरअसल अभी भी लोगों में नोटा को लेकर जागरूकता का अभाव है। नोटा के अन्तर्गत मतदान का प्रतिशत उन स्थानों में अधिक रहा है जो नक्सल वाद से प्रभावित इलाके हैं या फिर आरक्षित निर्वाचन क्षेत्र है। इसका अर्थ यह है कि निर्वाचन क्षेत्रों को आरक्षित करने के सन्दर्भ में अभी भी सहभागिता का अभाव है। एक और संकेत यह देखने को मिला है कि जहाँ केवल दो मुख्य राजनीतिक दलों के उम्मीदवार निर्वाचन मैदान में थे वहां भी नोटा के अन्तर्गत मतदान का प्रतिशत अधिक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. छोकर, जगदीप आलेख ''बहुत जरूरी हैं चुनाव सुधार'', प्रभात खबर, 29 जुलाई, 2021
2. कुरेशी, एस.वाई आलेख ''भारत : 65 साल में असाधारण गणतंत्र'', 23 जनवरी 2015
3. दुबे, अभय कुमार आलेख ''काले धन पर निर्वाचन सुधार से ही लगेगी लगाम'', दैनिक भास्कर, 18 नवम्बर, 2016
4. विश्व के 33 देशों में अनिवार्य मतदान, सजा और जुर्माने का भी प्रावधान, जागरण, 3 दिसम्बर, 2019
5. राणा, शिवेन्द्र आलेख '' सवाल चुनावी खर्च का'' जनसत्ता, 10 नवम्बर, 2021
6. राजस्थान पत्रिका, 'क्या अब चुनाव भी फिक्स', 2 जनवरी, 2016
7. राजस्थान पत्रिका 'मोदी के प्रस्ताव पर चुनाव आयोग का प्लान बी', 25 मई, 2018
8. आढ़ा, रामसिंह, भारत के निर्वाचन व्यवस्था : चुनौतियां एवं सम्भावनाएं एबीडी पब्लिशर्स जयपुर, 2008, पृ. 38
9. चुनाव आयोग ने कहा, एक से अधिक सीटों पर नामांकन करने वाले उम्मीदवारों पर लगे रोकय कानून में संशोधन की मांग, नवभारत टाइम्स, 17 जून, 2022
10. सिंह, देवेन्द्र आलेख '' आसान नहीं राजनीति के अपराधीकरण पर रोक, बाहुबली में ही जनता को दिखाई देता है समस्या का समाधान'', दैनिक जागरण, 21 फरवरी, 2020
11. राजस्थान पत्रिका, 'है कोई मोल या चुनावी बोल', 21 अप्रैल, 2019
12. चतुर्वेदी, बी.के. आलेख ''चुनावी फंडिंग : संस्थागत सुधार की दरकार'', अमर उजाला समाचार पत्र, 13 अप्रैल, 2021
13. राजस्थान पत्रिका, 'नो वोट बस दिखावा', 6 अक्टूबर, 2013

❖◆❖